।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

* आर्य, सनातन और हिन्दू धर्म
* धर्म परिवर्तन होता ही नहीं

श्री परमहंस आश्रम परिसर, शक्तेषगढ़, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश में दिनांक 4 अप्रैल 2011, सोमवार के प्रातःकालीन सत्संग में एक श्रद्धालु ने प्रश्न किया– ''महाराज जी! आये दिन हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन के समाचार सुनने को मिलते हैं। कृपया बतायें इस समस्या का समाधान क्या है?''

पूज्य महाराजश्री ने बताया कि आश्रमीय साहित्य में यत्र-तत्र इस प्रकरण का उल्लेख है। परमपूज्य गुरुदेव श्री परमहंस जी महाराज के समक्ष भी ऐसा ही एक प्रश्न आया था कि 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। यह नामकरण तो अरब आक्रामकों द्वारा सिन्धु नदी के तटवर्ती निवासियों के लिए प्रयुक्त एक घृणात्मक सम्बोधन था जो धीरे-धीरे यहाँ के निवासियों की पहचान के रूप में प्रचलन में आ गया तो हिन्दू धर्म सनातन धर्म कैसे है?

उस समय गुरु महाराज ने उन्हें बताया था– ''नहीं हो! यह नाम अरब आक्रमणकारियों की देन नहीं बल्कि उनसे भी प्राचीन है क्योंकि भारत के सुदूर वनप्रान्तों, आसाम और ब्रह्मा (वर्मा) इत्यादि क्षेत्रों जहाँ इस्लाम का प्रचार-प्रसार और प्रशासन व्यवस्था नहीं थी, वहाँ भी पूर्ण श्रद्धा से स्वीकृत है।'' (देखें– 'जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति', पृष्ठ–405, संस्करण– सन् 2006)

यह सच है कि धार्मिक आधार पर गठित संगठन भी इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं कि हिन्दू किसे कहते हैं? उनका मानना है कि इस प्रश्न की निर्विवाद व्याख्या आज तक नहीं हुई और न होनी ही उत्तम है क्योंकि

यदि कहें कि वर्णाश्रम व्यवस्था मानने वाला हिन्दू है तो हिन्दुओं में बहुत से ऐसे हैं जो वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति और छुआछूत नहीं मानते। यदि कहा जाय 'जो वेद-शास्त्रों का माने वही हिन्दू' तो बौद्ध, जैन इत्यादि वेदों को प्रमाण नहीं मानते। यदि कहें 'जो अवतार माने वही हिन्दू' तो हिन्दुओं में ही बहुत से पन्थ अवतारों में श्रद्धा नहीं रखते। यदि यह कहा जाय कि चोटी-धोती या यज्ञोपवीत धारण करने वाला हिन्दू है, तब भी बहुत से प्रान्तों में ऐसा नहीं करते और अपने को हिन्दू कहते हैं। शवदाह करने वाले को हिन्दू कहें तो बहुत से हिन्दू जल-प्रवाह करते या समाधि बनाते देखे जाते हैं। यदि भारत के निवासियों को हिन्दू कहा जाय तो विदेशों में रहने वाले हिन्दू इससे वञ्चित रह जायेंगे। यदि आर्यवंशजों को हिन्दू कहें तो पूर्वोत्तर में असम, मेघालय इत्यादि के मंगोलायड नस्ल से समानता रखने वाले और दक्षिण भारत के द्रविड़ लोग हिन्दू नहीं रह जायेंगे। इसलिए हिन्दू एक संस्कृति है जिसमें हर तरह की उपासना की स्वतन्त्रता और सहनशीलता है। अच्छा तो यह होगा कि जो कोई अपने को हिन्दू कहता है, हिन्दू है।

कहना न होगा कि इसी तरह हिन्दूधर्म के बारे में कोई ज्ञान उन्हें भी नहीं है जो वरिष्ठ पदों पर रह चुके हैं। कुछ वर्ष पहले ईसाइयों के धर्मगुरु पोप पाल भारत पधारे। उनके स्वागत में समूचा तन्त्र उमड़ पड़ा। वापसी में वायुयान में बैठते समय उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री से पूछ लिया– यह हिन्दू क्या होता है? उन्हें उत्तर मिला– हिन्दू एक विचार है! विचार तो क्षण-क्षण पर बदलते ही रहते हैं। क्या इतना अस्थिर है हिन्दू धर्म?

वस्तुतः प्राचीन भारत में शुंगकाल से भारत की मूलभाषा संस्कृत, धर्मशास्त्र गीता और गौरवपूर्ण इतिहासग्रन्थ महाभारत के पठन-पाठन पर कड़े प्रतिबन्ध लग जाने के कारण इन भ्रान्तियों ने जन्म लिया कि हिन्दू शब्द कहाँ से आया, आर्य कहाँ से आये और हिन्दू धर्म सनातन कैसे?

पहले पूरे भारत में बोलचाल की भाषा संस्कृत थी किन्तु दो हजार वर्ष से गीता के एक श्लोकांश **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं'** को लेकर तत्कालीन

व्यवस्थाकारों ने प्रचारित किया कि चार वर्णों की संरचना भगवान ने स्वयं की और इस प्रकार समाज में घृणा और फूट की दीवार खड़ी कर दी। कदाचित् गीता पढ़कर कोई समझ न जाय कि भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्यों को नहीं बल्कि चिन्तन कर्म को चार भागों में बाँटा अतः उन्होंने व्यवस्था दी कि गीता घर में रखो ही मत; नहीं तो लड़का संन्यासी हो जायेगा। गीता महाभारत का एक अंश है इसलिए उन्होंने कहा– महाभारत मत पढ़ना, नहीं तो घर में महाभारत जैसा विनाश हो जायेगा। महाभारत पूर्वजों की गौरवगाथा है। वह शौर्य को जगाता है। यदि शौर्य जग जायेगा तो शोषित वर्ग हमला कर सकता है इसलिए उनसे शस्त्र छीन लिया गया कि शस्त्र केवल क्षत्रिय उठा सकता है। अपने वस्तु की रक्षा में ब्राह्मण भी उठा सकता है किन्तु वैश्य और शूद्र शस्त्र नहीं रख सकते। शिक्षा, शास्त्र, शस्त्र और इतिहास पर प्रतिबन्ध लग जाने से भारत अँगूठा छाप हो गया, समाज बिखर गया और इसी व्यवस्था को लोगों ने सनातन धर्म कहकर चला दिया, स्व-धर्म कहकर चला दिया और अब भारत भूल गया कि वह हिन्दू क्यों है! जबकि–

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।। (गीता, 13/4)

ऋषियों ने इस गीताशास्त्र का विधिवत् चिन्तन करके इस रहस्य को स्पष्ट किया और गीता से ही धर्म के तीन आदर्श नाम आर्य, सनातन और हिन्दू दिये जिससे मनुष्य चाहकर भी न भटक सके।

गीता के आरम्भ में ही भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।। (गीता, 2/2)

अर्जुन! तुझे इस विषम स्थल में यह अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया? न यह कीर्ति बढ़ाने वाला है, न कल्याण करने वाला है, न ही पूर्व वरिष्ठ महापुरुषों ने भूलकर इसका आचरण ही किया। **'अनार्यजुष्टम्'–** यह

अनार्यों का आचरण तुमने कहाँ से सीखा? गीता आर्य-संहिता है, जिसमें है कि सिवाय आत्मा के किसी का अस्तित्व नहीं है। जो उस परमात्मा के प्रति निष्ठावान है 'आर्य' है। उस आत्मा को विदित करने की विधि (गीतोक्त विधि – योग विधि) यज्ञ को जो आचरण में ढालता है वह आर्यव्रती है और इसके परिणाम में जिसकी आत्मा विदित है, जो आत्मतृप्त है, दर्शन, स्पर्श और आत्मस्थिति पा जाता है वह आर्यत्व प्राप्त है। जिसे अर्जुन धर्म-धर्म कहता रहा, भगवान ने कहा– अरे! तुझे यह घोर अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया। अर्जुन का जो प्रश्न था, आज का भारत उसी को उत्तर मानकर चल रहा है; जातिधर्म, कुलधर्म, पिण्डोदक क्रिया ही तो कर रहा है। रात-दिन और क्या कर रहा है? स्व-स्व धर्म का पालन करो– जिसको जो कर्म जन्म से मिला है उसी का पालन ही तो कर रहा है। अर्जुन तो सीख गया किन्तु पीछे वाली पीढ़ी आज भी जहाँ की तहाँ है कि वही जाति धर्म शाश्वत धर्म है, कुल धर्म सनातन धर्म है, वही पिण्डोदक क्रिया और वर्णसंकर; जिसे भगवान ने अज्ञान कहा।

अर्जुन ने सविनय कहा– प्रभो! आप ही बताइये कि सत्य क्या है? भगवान ने कहा–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ (गीता, 2/16)

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। असत् का अस्तित्व नहीं है, उसे किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। क्या है वह सत्य और असत्य? इस पर भगवान ने बताया कि अर्जुन! आत्मा ही सत्य है और भूतादिकों के शरीर नाशवान हैं। शरीरों के ही उतार-चढ़ाव, ऊँच-नीच को आज लोग धर्म मान बैठे हैं। अर्जुन! आत्मा ही सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ (गीता, 2/24)

आत्मा अच्छेद्य है, इसे शस्त्र नहीं काट सकता, अग्नि इसे जला नहीं सकती, वायु सुखा नहीं सकता, जल इसे गीला नहीं कर सकता। यह सदा रहने वाला एकरस और सनातन है। सनातन केवल आत्मा है। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर– ये पर्यायवाची शब्द हैं। यह अन्तःकरण में सदा विद्यमान होने से आत्मा, सबमें रहते हुए सबसे परे है इसलिए परमात्मा, स्वर के निरोध काल में विदित होने से ईश्वर– ऐसे हजारों नाम हो सकते हैं। यह तो प्रार्थना है, चरित्र-चिन्तन है। इस आत्मा के प्रति जो श्रद्धावान है वही सनातनधर्मी है। यदि हम आत्मा के प्रति श्रद्धावान नहीं, उस परमतत्त्व परमात्मा के प्रति समर्पित नहीं हैं तो हम भटके हुए हैं, धार्मिक नहीं!

मान लिया उस आत्मा का ही अस्तित्व है, वही सनातन है, वह सनातन ज्योतिर्मय प्रभु रहता कहाँ है? भगवान बताते हैं–

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ (गीता, 13/17)

वह ज्योतियों का भी ज्योति है, अंधकार से अत्यन्त परे है, **'ज्ञानगम्यं'**– ज्ञान के द्वारा सबके लिए सुलभ और **'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्'**– वह सनातन आत्मा हृदय में रहता है। जिन्हें हमें प्राप्त करना है उनका निवास बैकुण्ठ में नहीं, आकाश में नहीं, हृदय में है। हिन्दू शब्द भगवान के स्थान का वाचक है। उस हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से हम हिन्दू कहे जाते हैं। हृदय में बैठकर भगवान करते क्या हैं? इस पर कहते हैं–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ (गीता,15/15)

सबके हृदय में समाविष्ट मुझसे ही बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता होती है। यह साधारण बुद्धि नहीं बल्कि वह बुद्धि जो भगवान को धारण कर ले। ज्ञान दर्शन के साथ मिलने वाली अनुभूति है। विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता हृदय में बैठकर ईश्वर प्रदान करते हैं। इसी हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से आप हिन्दू हैं।

गीता के समापन पर भगवान अपनी ओर से पुनः स्पष्ट करते हैं– अर्जुन! जानते हो कि ईश्वर का निवास कहाँ है?–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। (गीता, 18/61)

अर्जुन! वह ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय देश में निवास करता है। इतना समीप कि हमारे हृदय में है तो हम उसे देखते क्यों नहीं? भगवान बताते हैं कि मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर लोग भ्रमवश भटकते ही रहते हैं इसलिए नहीं देखते। जब ईश्वर हृदय में ही है तो हम शरण किसकी जायँ? भगवान अगले श्लोक में ही आदेश देते हैं–

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। (18/62)

अर्जुन! उस हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ, **'सर्वभावेन'–** सम्पूर्ण भावों से जाओ। ऐसा नहीं कि थोड़ा भाव संकटमोचन में, कुछ पशुपतिनाथ में, कुछ देवी में.... तब तो हम भटक गये। मन-क्रम-वचन से भली प्रकार समर्पित होकर जाओ। मान लें, हमने सारी मान्यताओं से चित्त समेटा और हृदयस्थ ईश्वर की शरण में चले ही गये तो उससे लाभ क्या है? भगवान कहते हैं– अर्जुन! **'तत्प्रसादात्परां शान्तिम्'** तुम उसके कृपाप्रसाद से परमशान्ति को प्राप्त कर लोगे और **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'** उस निवास-स्थान को पा जाओगे जो शाश्वत है, एकरस है, सनातन है,

अपरिवर्तनशील है, जो सदैव रहेगा। उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाने वाला ही हिन्दू है। हिन्दू शब्द ईश्वर के निवास का परिचय देता है।

सृष्टि में जो भी उस ईश्वर को ढूँढ़ेगा, हृदय में ही पायेगा। इसलिये मानवमात्र जो भी हृदयस्थ ईश्वर का आराधक है सब हिन्दू हैं। अन्यत्र ढूँढ़ने पर भी ईश्वर नहीं मिलेगा। संसार का भटका हुआ मानव भटकाव से ऊपर उठकर जब भी ईश्वर की ओर उन्मुख होता है हृदयस्थ ईश्वर की ही शरण जाता है इसलिए वह सभी हिन्दू हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, पर्व-उत्सव तो गुरुघरानों के पहचान हैं। सृष्टि का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर के प्रशस्त पथ पर आते ही हिन्दू हो जाता है – भले ही वह अपने को कुछ भी कहता या मानता रहे। जब तक वह शरण में नहीं आता मोह-निशा में आक्रान्त है और ज्यों ही वह हृदयस्थ ईश्वर की शरण आता है, वह हिन्दू है। यह नाम अन्य किसी की देन नहीं, आदिशास्त्र गीता की ही निष्पत्ति है।

हिन्दू शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'ही' हिय अर्थात् हृदय और इन्दु अर्थात् चन्द्रमा! हिन्दू शब्द इस तथ्य का परिचायक है कि भगवान आपके हृदय में विद्यमान हैं। नास्तिक, जो भगवान को नहीं चाहता, उसके हृदय में भी भगवान भली प्रकार हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (गीता, 2/69)

इस जगत्‌रूपी रात्रि में सभी प्राणी निश्चेष्ट पड़े हुए हैं, इसमें संयमी पुरुष जग जाते हैं। गीतोक्त साधना समझकर जहाँ किसी ने अभ्यास किया, संयम सधा तहाँ वह जीव तत्काल जग जाता है। ऐसी मोह-निशा में भी भगवान क्षीण प्रकाश के रूप में हर व्यक्ति के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। रात्रि में तो चन्द्रमा ही प्रकाश करता है। संयम और चिन्तन पार लगते ही रात्रि का अवसान होता जाता है, ईश्वरीय प्रकाश फैलने लगता है। रात्रि गयी तो चन्द्रमा क्या करेगा?

श्रीभगवान कहते हैं– **'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।'**– वहाँ न चन्द्रमा प्रकाश कर सकता है, न सूर्य और न अग्नि ही; इसलिए ईश्वरीय प्रकाश जहाँ फैला तो रात्रि का अवसान हो गया, साधक हृदयस्थ ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। अस्तु, इन्दु जो क्षीण प्रकाश है, ज्योतिर्मय परमात्मा के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

हिन्दू शब्द परमात्मा के निवास-स्थान का परिचायक शब्द है और गीताशास्त्रसम्मत है। इसी प्रकार आर्य न कहीं से आता है, न कहीं जाता है। अस्तित्व के प्रति निष्ठावान हुए तो आर्य और जब तक नहीं हैं तब तक अनार्य! परमात्मा ही सनातन है। सनातन के प्रति श्रद्धावान सनातनधर्मी है।

समाज में जो देवी-देवता पूजा चल रही है, यह शिशु को वर्णमाला ज्ञान सिखाने जैसा है कि 'क' से कमल या 'ए' फार एप्पल! शिक्षा की आधी दूरी सम्पन्न होते ही यह पाठ समाप्त हो जाता है। आधी दूरी तय कराकर गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर इसी ने पहुँचाया है। अचेत आत्मा को जगाने के लिए, परमात्मा का रहस्य प्रकट करने के लिए रासलीला, रामलीला, कथा, कीर्तन, नृत्य, गायन धर्म की खुली पुस्तक चित्रकथा हैं। भगवान से श्रद्धा जोड़ने, अचेत आत्माओं को जगाने के लिये हैं। यह सभी भजन के ही अन्तर्गत हैं।

हिन्दूधर्म मूर्तिपूजा से आरम्भ होता है। मन्दिर, मस्जिद, चर्च और प्रार्थना-स्थलियाँ अध्यात्म की आरम्भिक पाठशालायें हैं। वस्तु-पूजा, प्रतीक-पूजा, पुस्तक या लाकेट-पूजा, दीवाल या चबूतरा पूजन मूर्तिपूजा के ही विभिन्न रूप हैं। अधिकांश मन्दिर, मूर्तियाँ प्राचीन पूर्वज महापुरुषों के स्मृति-स्थल ही तो हैं। बालक पहले इन स्थलियों पर सिर झुकाना सीखता है तो कभी वृक्ष-पूजन अपनाता है। वह स्वयं में एक मन्दिर है जिसमें ईंट-पत्थर जोड़ने की भी आवश्यकता नहीं रहती। माता-पिता और गुरुओं से आरम्भिक पाठ पढ़कर वयस्क होते-होते वह महात्माओं के संसर्ग में आता है। क्रमशः परिपक्व होने पर उनसे प्रश्न-परिप्रश्न कर वह एक परमात्मा की शरण में

जाते ही गीतोक्त साधन-पथ पर आ जाता है और हृदयस्थ परमात्मा की शोध में संलग्न हो जाता है।

रामचरितमानस भी आदिशास्त्र गीता का ही अनुवाद है–

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।
तव पद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर।।

(मानस, 7/48/1-4)

मन्दिर, मस्जिद इत्यादि माध्यमों को गोस्वामी तुलसीदास इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं–

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। विद्या विनय बिबेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।

(मानस, 7/125/4-7)

उपर्युक्त सभी साधन वेदवर्णित हैं। जब अपना परिणाम देने की स्थिति में आते हैं तो एक हरि की भक्ति प्रदान करते हैं-

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई।।

(मानस, 7/119/18)

फिर वह गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर आ जाता है, वह हृदयस्थ ईश्वर का पुजारी हो जाता है, हिन्दू है।

सृष्टि के आरम्भ में सबका आदिशास्त्र गीता थी। वह अविनाशी योग विस्मृत हो चला तो द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा यह गीता पुनर्प्रकाश में

आयी। इसके अर्थ को लेकर भ्रान्तियाँ पनपने लगीं तो इसका यथावत् भाष्य 'यथार्थ गीता' प्रकाश में आयी जिसे 4-6 बार पढ़ लेने पर न कोई सन्देह है, न होगा। यही हृदयस्थ ईश्वर की साधना है।

सृष्टि में मानव मात्र का एक ही धर्म है– हृदयस्थ परमात्मा को विदित करना! उसकी निर्धारित विधि भी एक ही है– गीतोक्त नियत विधि! उसकी विशेषता बताते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं–

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता, 2/40)

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं है, सीमित फलरूपी दोष नहीं है और इसका स्वल्प अभ्यास भी महान् जन्म-मृत्युरूपी बन्धन से उद्धार करनेवाला होता है। आप इस कर्म-पथ पर दो कदम चल भर दें तो अगले जन्म में तीसरा ही कदम आगे बढ़ेगा और पड़ेगा। जैसे कोई बीज पृथ्वी पर डाला, वह अंकुरित हो गया, दो पत्ती फूट गयी तो वह फूलेगा, फलेगा और मिलेगा। माया में कोई क्षमता नहीं कि उसे नष्ट कर दे तो साधारण मनुष्य धर्म में परिवर्तन कैसे कर लेगा?

गीता के अध्याय 6 में भगवान कहते हैं– अर्जुन! वायुरहित स्थान में दीपक की लौ सीधे ऊपर की ओर जाती है, उसमें कम्पन नहीं होता। योगी के अच्छी प्रकार जीते हुए चित्त की यही परिभाषा है। उसकी वृत्ति शान्त स्थिर तैलधारावत् बाँस की तरह खड़ी हो जाती है। वृत्ति श्वास में समाहित हो जाती है। श्वास आई तो ओम्, गयी तो ओम्! बीच में दूसरा कोई संकल्प न आया, न टकराया। अर्जुन थोड़ा चौंका। वह बोला– प्रभो! इस मन को तो मैं वायु से भी तेज चलनेवाला समझता हूँ। इसका रुकना तो लगभग असम्भव है। अतः शिथिल प्रयत्नवाला श्रद्धावान पुरुष आपको न प्राप्त होकर किस दुर्गति को प्राप्त होता है? कहीं छिन्न-भिन्न बादल की तरह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता? छोटी-सी बदली आकाश में आई, न बरस पायी न बादलों से ही

मिल पायी और देखते ही देखते हवा के झोंकों से नष्टप्राय हो गयी, विलुप्त हो गयी। इसी प्रकार वह पुरुष भी बेचारा न संसार में भोग भोग पाया न आपको ही प्राप्त कर सका। कहीं वह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता?

भगवान ने बताया–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता, 6/35)

अर्जुन! निःसन्देह यह मन वायु से भी तेज चलनेवाला और निरोध करने में दुष्कर है किन्तु साधना समझकर अभ्यास और देखी-सुनी वस्तुओं में लगाव का त्याग अर्थात् वैराग्य के द्वारा यह भली प्रकार स्थिर हो जाता है। इस साधन को करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। इस साधन के प्रभाव से वह पुण्यवानों के लोक में अथवा पवित्र योगीकुल में जन्म लेता है। वहाँ विषयों में आकण्ठ डूबा होने पर भी पिछले जन्म के बुद्धिसंयोग को अनायास ही प्राप्त कर लेता है, उसी साधना को आगे बढ़ाता है और **'अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'** **(6/45)**– अनेक जन्मों के साधन के परिणाम में वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परमगति, परमधाम है। कागभुशुण्डि कई जन्मों के बाद पहुँच गये। वह कौआ हो गये लेकिन धर्म कभी नहीं बदला! जड़ भरत मृग हो गये लेकिन धर्म नहीं बदला। भगवान महावीर कभी शेर हुए, हाथी हुए; अन्त में लक्ष्य पर पहुँच गये, धर्म नहीं बदला। धर्म कभी नहीं बदलता। धर्म को लोग जानते ही नहीं इसलिए उन्हें लगता है कि धर्म परिवर्तन हो गया। परिवर्तन रूढ़ियों, परम्पराओं और प्रथाओं का होता है। धर्माचरण आरम्भ भर हो गया तो माया भी अवरोध नहीं डाल सकती तो यह क्षुद्र मनुष्य रहन-सहन बदलकर धर्म-परिवर्तन कैसे कर सकता है? यह एक भ्रान्ति है और धर्मशास्त्र गीता के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम है।

गीता में भगवान आश्वासन देते हैं– **'अपि चेत्सुदुराचारो'** **(9/30)–** अर्जुन! अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजता है तो

वह साधु मानने योग्य है। अनन्य माने अन्य न! किसी भी अन्य देवी-देवता को न भजते हुए जो निरन्तर मुझे भजता है वह साधु मानने योग्य है। कौन? वही दुराचारी! क्योंकि वह यथार्थ निश्चय से लग गया है। यथार्थ जो सत्य है, तत्त्व है; उसका निश्चय वहाँ स्थिर हो गया, उसका भटकाव समाप्त हो गया है। इतना ही नहीं,

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ (गीता, 9/31)

वह दुराचारी शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है, सदा रहने वाली शान्ति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन! निश्चयपूर्वक ध्रुवसत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। गीतोक्त साधन ऐसा जीवन बीमा जैसा है जिसके अनुसार थोड़ा भी साधन आपको जन्म-मृत्यु के बन्धन से पार लगा देता है। तीन-चार बार गीताभाष्य 'यथार्थ गीता' पढ़ लिया, कुछ अभ्यास शुरू कर दिया, बीजारोपण हो गया तो विनाश कभी नहीं होगा। ये साधारण लोग मेरा धर्म, तेरा धर्म करके क्या परिवर्तन करेंगे? माया का पूरा प्रकोप हो तब भी वह नष्ट नहीं होगा। इसलिए सद्गुरु की शरण होकर गीतोक्त साधना आरम्भ करें, सबको गीता प्रदान करें, धर्मान्तरण का प्रश्न सदा-सदा के लिये सुलझ जायेगा।

!! बोलिये श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय !!

सम्पूर्ण विश्व में यदि कोई भी व्यक्ति इस गीतोक्त विधि का आचरण करता है तो वह हिन्दू है चाहे वह अपने को किसी देश, सम्प्रदाय, स्थिति अथवा परिस्थिति का मानता हो। अतः हिन्दू शब्द सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों के लिए सुलभ एवं उपलब्ध है। **'इति गुह्यतमं शास्त्रम्'**– यह गीता गोपनीय से भी अति गोपनीय शास्त्र है जो सम्प्रदाय और मज़हबों से भी ऊपर है।